

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 3 अध्याय 20: ब्रह्मा द्वारा रचित विभिन्न प्रकार के जीव

13 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



कारण-सागर के जल पर विराजमान भगवान् की नाभि से एक सहस्र सूर्यों के समान तेजस्वी कमल प्रकट होता है — और उसी कमल से, स्वयंभू, ब्रह्मा का आविर्भाव होता है, वह सृष्टिकर्ता जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रत्येक प्रकार के जीव से भर देगा।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में भगवान् के वराह अवतार के हाथों दैत्य हिरण्याक्ष के वध का वर्णन करने के पश्चात्, महर्षि मैत्रेय अब विदुर के अनुरोध पर एक सर्वथा भिन्न प्रकार के प्रश्न की ओर मुड़ते हैं — भगवान् किस प्रकार दुष्टता का नाश करते हैं, यह नहीं, अपितु सम्पूर्ण जीव-सृष्टि — देवता, दैत्य, ऋषि, पितर, गन्धर्व, सर्प, तथा अन्ततः मानव-जाति स्वयं — किस प्रकार अस्तित्व में आई। जो कुछ अब प्रकट होता है वह तृतीय स्कन्ध के सर्वाधिक जीवन्त तथा असाधारण अध्यायों में से एक है: स्वयंभू सृष्टिकर्ता ब्रह्मा प्रत्येक जाति को शून्य से केवल इच्छामात्र से उत्पन्न नहीं करते। वे उन्हें एक के पश्चात् एक, अपने ही शरीर तथा अपने ही क्षणिक मानसिक भावों से — अपनी अज्ञानता, अपनी क्षुधा, अपनी लज्जा, अपनी आलस्य, अपना भय, अपनी आत्म-प्रशंसा, अपनी थकान से — विकसित करते हैं, तथा प्रत्येक व्यक्त रूप को वही जीव अपना लेते हैं जिन्हें वह जन्म देता है। यह एक विचित्र तथा प्रायः चौंकाने वाला वृत्तान्त है, सृष्टि की किसी सुव्यवस्थित सूची से सर्वथा भिन्न, तथा यह एक शान्त पूर्णता के स्वर में समाप्त होता है: मनुओं के जन्म के साथ जो मानव-जाति को आगे बढ़ाएँगे, तथा ऋषियों के साथ जिन्हें ब्रह्मा वस्तुतः अपना ही एक अंश प्रदान करते हैं।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 3 (तृतीय स्कन्ध)
- अध्याय: 20 (विंश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: ब्रह्मा द्वारा रचित विभिन्न प्रकार के जीव
- मुख्य वक्ता: मैत्रेय, विदुर के प्रश्न के उत्तर में (सम्पूर्ण कथा, बाह्यतम स्तर पर, सूत गोस्वामी द्वारा महर्षि शौनक तथा नैमिषारण्य की सभा को सुनाई जा रही है)
- मुख्य श्रोता: विदुर, कुशावर्त (हरिद्वार) के आश्रम में; बाह्य स्तर पर, शौनक तथा नैमिषारण्य के सन्त
- मुख्य स्थल: बाह्य कथा गंगा-तट पर कुशावर्त में घटित होती है, जहाँ विदुर अपने भ्राता धृतराष्ट्र के दरबार को त्यागकर मैत्रेय से मिलने आए हैं; वर्णित घटनाएँ सृष्टि के आदिकाल में, कारण-सागर के जल पर तथा नवसृजित ब्रह्माण्ड में घटित हुईं
- मुख्य विषय: विदुर का मैत्रेय से यह प्रश्न कि स्वयंभू मनु की ओर से कार्य करते हुए ब्रह्मा ने किस प्रकार अनेक जीव-जातियों को विकसित किया; मैत्रेय का कारण-सागर के अण्डे के निर्माण तथा भगवान् की नाभि-कमल से ब्रह्मा के आविर्भाव का वर्णन; तथा ब्रह्मा द्वारा — अपने ही परिवर्तनशील शरीरों तथा मानसिक भावों से — अविद्या, यक्ष तथा राक्षस, देवगण, दैत्य, “सन्ध्या” तथा उसके प्रति असुरों का मोह, गन्धर्व तथा अप्सराएँ, भूत तथा पिशाच, साध्य तथा पितर, सिद्ध तथा विद्याधर, किम्पुरुष तथा किन्नर, सर्प तथा नाग, मनु, तथा अन्ततः ऋषियों की क्रमिक रचना
- मुख्य श्लोक-संख्या: स्कन्ध 3, अध्याय 20, श्लोक 1-53
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

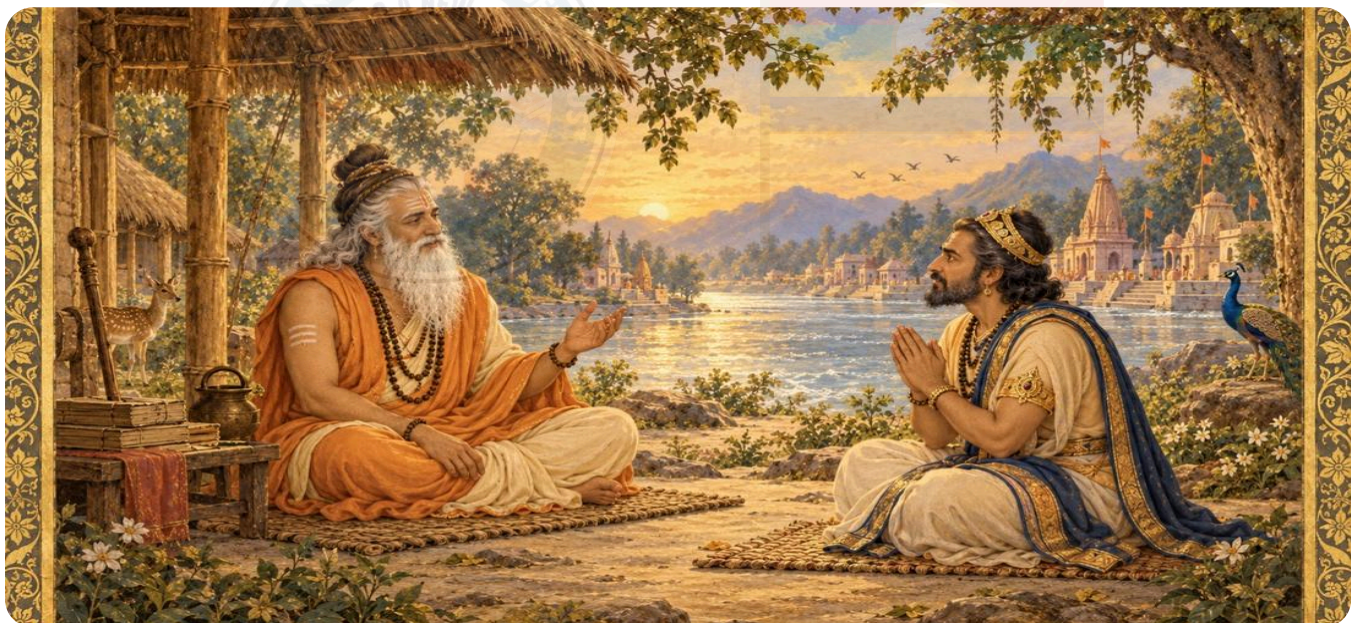
शौनक का प्रश्न तथा विदुर की यात्रा की पुनरावृत्ति

अध्याय का आरम्भ न तो मैत्रेय से होता है न विदुर से, अपितु शौनक से होता है, नैमिषारण्य की सभा के अध्यक्ष सन्त, जो सूत गोस्वामी की ओर एक ऐसे प्रश्न के साथ मुड़ते हैं जो सम्पूर्ण स्कन्ध की कथा-रूपरेखा तक पहुँचता है।

शौनक ने कहा: “पृथ्वी के रूप में एक आधार स्थापित कर लेने के पश्चात्, हे सूतपुत्र, स्वयंभू मनु ने अन्य जीवों को विकसित करने के लिए, जो अभी जन्म लेने शेष थे, कौन-सा साधन अपनाया?” (श्लोक 1)

यह श्रीमद्भागवतम् की संरचना का एक छोटा किन्तु महत्त्वपूर्ण विवरण है — वार्तालापों के भीतर नीहित वार्तालापों की एक बहुस्तरीय शृंखला, जिसमें बाह्यतम श्रोता समय-समय पर पुनः प्रकट होकर ठीक वही प्रश्न पूछते हैं जो पाठक स्वयं मन में रखता है। शौनक सभा को, तथा हमें भी, यह स्मरण कराते हैं कि विदुर कौन थे और उनकी साक्षी इतनी महत्त्वपूर्ण क्यों है: भगवान् के एक महान् भक्त तथा श्रीकृष्ण के परम मित्र, इतने समर्पित कि उन्होंने अपने ज्येष्ठ भ्राता धृतराष्ट्र तथा उनके पुत्रों को भगवान् तथा उनके प्रिय पाण्डवों के प्रति उनके अपराधों के कारण त्याग दिया (श्लोक 2)। सन्त द्वैपायन वेदव्यास से उत्पन्न होकर तथा तेज में उनसे किसी प्रकार न्यून न होकर, विदुर ने तीर्थों में और भी शुद्ध होकर, हरिद्वार में कुशावर्त में सत्य के ज्ञाताओं में अग्रगण्य महर्षि मैत्रेय की खोज की (श्लोक 3-4)। शौनक सूत से उनके मध्य हुई वार्ता का वर्णन करने का अनुरोध करते हैं, यह विश्वास करते हुए कि उनकी बातचीत में अवश्य ही श्रीहरि के चरण-कमलों से सम्बन्धित पावन कथाएँ रही होंगी, उतनी ही पवित्र करने वाली जितनी गंगा का जल, जो स्वयं उन्हीं चरणों से प्रवाहित होता है (श्लोक 5)। “कौन-सा व्यक्ति, जिसका सौन्दर्य-बोध विकसित हो,” वे पूछते हैं, “श्रीहरि की लीलाओं की अमृत-सम कथाओं का पान करते हुए तृप्त हो सकता है?” (श्लोक 6)

इस प्रकार प्रश्न किए जाने पर, सूत, अपना मन भगवान् में स्थिर करके, उनसे केवल इतना कहते हैं, “सुनिए!” (श्लोक 7) वे सभा को स्मरण कराते हैं कि विदुर, भगवान् के वराह अवतार द्वारा समुद्र से पृथ्वी उठाने तथा हिरण्यक्ष के वध की कथा सुनकर अभी-अभी प्रसन्न हुए थे, और उन्होंने मैत्रेय की ओर एक नया प्रश्न किया (श्लोक 8)।



गंगा के तट पर कुशावर्त के आश्रम में, भगवान् के वराह अवतार की कथा से अभी भी आनन्दित विदुर, मुनि मैत्रेय की ओर एक नया प्रश्न लेकर मुड़ते हैं — ब्रह्मा ने जीवों की अनेक जातियों की रचना किस प्रकार की? (श्लोक 8-11)।

विदुर का प्रश्न: ब्रह्मा ने जीवों की रचना कैसे की?

जब विदुर का प्रश्न आता है, वह अपनी जिज्ञासा में सटीक तथा लगभग तकनीकी है — वे सृष्टि की क्रियाविधि को स्वयं समझना चाहते हैं।

विदुर ने कहा: “जो बातें हमें दृष्टिगोचर नहीं होतीं वे आप जानते हैं, अतः मुझे बताइए, हे पावन ऋषि, प्रजापतियों — सृष्ट जीवों के स्वामियों — को विकसित करने के पश्चात् जीवों की रचना हेतु ब्रह्मा, प्रजापतियों के स्वामी, ने क्या किया। ऋषि मरीचि तथा अन्य ब्राह्मणों ने, तथा स्वयंभू मनु ने, ब्रह्मा की आज्ञा का पालन करते हुए सृष्टि को किस प्रकार विकसित किया? क्या उन्होंने इसे अपनी पत्नियों के साथ मिलकर विकसित किया, अथवा अपने कार्य में स्वतन्त्र रहते हुए, अथवा उन सभी ने संयुक्त रूप से इसे उत्पन्न किया?” (श्लोक 9-11)

यह प्रश्न आगे आने वाले सम्पूर्ण वृत्तान्त की भूमिका बनाता है: सृष्टि की प्रकृति पर कोई अमूर्त दार्शनिक प्रवचन नहीं, अपितु एक प्रत्यक्ष, लगभग आख्यानत्मक वर्णन कि ब्रह्मा ने वास्तव में क्या किया, चरण-दर-चरण, जीव-दर-जीव।

कारण-सागर का अण्डा तथा उसमें भगवान् का प्रवेश

मैत्रेय का उत्तर उस मूल बिन्दु से आरम्भ होता है जहाँ स्वयं ब्रह्मा का भी अस्तित्व अभी नहीं था।

मैत्रेय ने उत्तर दिया: जब प्रकृति की रचयिता तीन गुणों की साम्यावस्था प्रारब्ध की क्रिया से — जिसका कार्य समझना कठिन है — विचलित हो गई, तो प्रकृति तथा काल की अधिष्ठात्री परम आत्मा से, तथा केवल भगवान् की समीपता से, महत्तत्त्व, ब्रह्माण्डीय बुद्धि का सिद्धान्त, विकसित हुआ। महत्तत्त्व से — जिसमें रजोगुण की प्रधानता है — जीवों के प्रारब्ध द्वारा प्रेरित होकर, अहंकार विकसित हुआ, जो स्वयं तीन प्रकार का है; तथा अहंकार ने अपनी बारी में पंच स्थूल तत्त्वों तथा उनके साथ आने वाले पंच-पंच सिद्धान्तों के अनेक समूहों को विकसित किया। (श्लोक 12-13)

पृथक्-पृथक् रूप से, इनमें से कोई भी सिद्धान्त भौतिक ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने में असमर्थ था। केवल जब वे भगवान् की अपनी दिव्य शक्ति की सहायता से संयुक्त हुए, तभी वे एक तेजस्वी अण्डे को विकसित करने में समर्थ हो सके (श्लोक 14)। एक सहस्र वर्षों से अधिक समय तक वह अण्डा कारण-सागर के जल पर निर्जीव अवस्था में पड़ा रहा — जब तक कि स्वयं भगवान् ने, उसके अधिष्ठाता देवता के रूप में, उसमें प्रवेश नहीं किया (श्लोक 15)।

तस्य नाभेरभूत्पद्मं सहस्रार्कोरुदीधिति ।

सर्वजीवनिकायौको यत्र स्वयमभूत्स्वराट् ॥ १६ ॥

tasya nābher abhūt padmaṁ sahasrārkoru-dīdhiti sarva-jīvanikāyauko yatra svayam abhūt svarāṭ

अर्थ: भगवान् की नाभि से — जैसे ही वे उस अण्डे के अधिष्ठाता बने — एक सहस्र सूर्यों के तेज के समान चकाचौंध करने वाला तथा समस्त जीवों का आश्रय-स्थल बनने के लिए नियत एक कमल प्रकट हुआ; उसी कमल से स्वयं ब्रह्मा, स्वयंप्रकट, आविर्भूत हुए। (स्कन्ध 3, अध्याय 20, श्लोक 16)

यह एकल श्लोक सम्पूर्ण भागवत पुराण के सर्वाधिक चिरस्थायी चित्रों में से एक को समेटे हुए है: कारण-जल पर लेटे हुए भगवान्, अपनी ही नाभि से उस कमल को जन्म देते हैं जो ब्रह्मा का, उस जीव का जो अब सृष्टि के कार्य को आगे ले जाएगा, आसन तथा स्रोत, दोनों बन जाता है। इस अध्याय में आगे जो कुछ भी होता है — प्रत्येक देवता, दैत्य, ऋषि तथा प्राणी — अपना वंश इसी एक क्षण तक ले जाता है।



सहस्र वर्षों से अधिक समय तक ब्रह्माण्ड-अण्ड कारण-सागर के जल पर निर्जीव पड़ा रहता है, जब तक भगवान् उसमें प्रवेश नहीं करते; तब उनकी नाभि से एक सहस्र सूर्यों के तेज वाला कमल प्रकट होता है, और उसी कमल से स्वयंभू ब्रह्मा का आविर्भाव होता है (श्लोक 14-16)।

अविद्या, तथा यक्षों और राक्षसों का जन्म

भगवान् के अन्तर्यामी रूप में अपने हृदय में प्रवेश कर लेने के पश्चात्, ब्रह्मा पूर्ववर्ती कल्पों में विकसित योजना के अनुसार विभिन्न लोकों की सृष्टि आरम्भ करते हैं (श्लोक 17)।

इस एक ही श्लोक में एक गहरा तात्पर्य छिपा है, जिसे वैष्णव दृष्टि से पढ़ने पर स्पष्ट रूप से उभरता है। ब्रह्मा की सृजन-सामर्थ्य वस्तुतः उनका अपना स्वामित्व नहीं है — वह उन्हें तभी प्राप्त होती है जब कारण-सागर पर शयन करने वाले अधिष्ठाता भगवान् स्वयं उनके हृदय में प्रवेश कर उनकी बुद्धि को जाग्रत करते हैं (श्लोक 17)। यही सत्य इसी अध्याय में आगे और भी नाटकीय ढंग से प्रकट होता है: जब ब्रह्मा अपनी ही सन्तानों से घिर जाते हैं और अपनी किसी भी सामर्थ्य से स्वयं को नहीं बचा पाते, तब उन्हें बचाने वाली उनकी अपनी सृजन-शक्ति नहीं, अपितु भगवान् का सीधा वचन — “अपने इस अशुद्ध शरीर को त्याग दो” — ही होता है (श्लोक 25-28)। इन दोनों प्रसंगों को साथ रखकर देखें तो एक ही तथ्य दो दिशाओं से प्रकट होता है: सृष्टि करने वाला तथा उसके सामने असहाय हो जाने वाला, दोनों वस्तुतः वही एक व्यक्ति है, क्योंकि वास्तविक कर्ता तो भीतर विराजमान भगवान् ही हैं, जिन्होंने ब्रह्मा को केवल बुद्धि तथा अवसर उधार दिया है। दूसरे शब्दों में, सृष्टि के वास्तुकार स्वयं भी उसी भगवान् के आश्रित साधन मात्र हैं, जिनकी वे सेवा करते हैं।

किन्तु उनका प्रथम सृष्टि-कार्य किसी प्रकाशमय जीव का नहीं है — वह उनकी अपनी छाया है, उनकी अपनी अज्ञानता, जिससे वे अविद्या के पाँच प्रकार विकसित करते हैं: तमिस्र, अन्धतमिस्र, तम, मोह तथा महामोह (श्लोक 18)।

अपने द्वारा निर्मित इस अन्धकारमय, छाया-शरीर को अरुचिकर पाकर ब्रह्मा ने उसे त्याग दिया — और यक्ष तथा राक्षस, जो उससे उत्पन्न हुए थे, उस त्यक्त रूप को अपना लेते हैं, जो रात्रि के रूप में तथा क्षुधा तथा तृष्णा के स्रोत के रूप में विद्यमान रहता है (श्लोक 19)। लगभग तत्काल ही, उसी क्षुधा तथा तृष्णा से अभिभूत होकर, वे अपने ही सृष्टिकर्ता की ओर मुड़ पड़ते हैं, चारों ओर से उन्हें निगल जाने के लिए दौड़ते हुए पुकार उठते हैं: “इसे मत छोड़ो — इसे खा जाओ!” (श्लोक 20)। ब्रह्मा, इस अप्रत्याशित मोड़ से भयभीत होकर, उनसे विनती करते हैं: “कृपया मुझे मत खाओ; अपितु मुझे छोड़ दो। क्योंकि तुम सब मेरे पुत्रों के रूप में जन्मे हो, हे यक्षो तथा राक्षसो!” (श्लोक 21)

यह एक चौंकाने वाला दृश्य है ठीक इसलिए क्योंकि यह कितना असुरक्षित है — ब्रह्माण्ड का सृष्टिकर्ता, अपनी ही नवीनतम सन्तानों से भयभीत, उन प्राणियों से दया की भीख माँगते हुए जो कुछ क्षण पहले तक अस्तित्व में ही नहीं थे। अध्याय, लगभग सहज ही, इन दोनों नामों की उत्पत्ति भी बताता है: जिन्होंने “इसे खा जाओ” (जक्षत) पुकारा वे यक्ष कहलाए, तथा जिन्होंने “इसे छोड़ दो” (रक्षत) पुकारा वे राक्षस कहलाए।



ब्रह्मा अपने ही अज्ञान की छाया-देह त्याग देते हैं; उससे जन्मे यक्ष तथा राक्षस, तत्काल भूख-प्यास से अभिभूत होकर, अपने ही सृष्टिकर्ता को घेर लेते हैं और उसे निगल जाने की पुकार करते हैं; यहाँ तक कि ब्रह्मा उनसे दया की भीख माँगते हैं (श्लोक 18-21)।

देवगण, तथा थकान से उत्पन्न दैत्य

इस विचलित करने वाले आरम्भ से, ब्रह्मा अधिक कोमल सृष्टियों की ओर मुड़ते हैं। अपने तेज से प्रकाशमान होकर, उन्होंने सबसे पहले उन देवताओं को उत्पन्न किया जिनमें सत्त्वगुण, अर्थात् सद्गुण, की प्रधानता थी; तथा जब उन्होंने उस तेजस्वी रूप को त्याग दिया जिससे वे उत्पन्न हुए थे — वह रूप जो अब दिन बन गया — देवताओं ने आनन्दपूर्वक उस पर अधिकार कर लिया (श्लोक 22)।

किन्तु अगली सृष्टि पुनः अन्धकारमय हो जाती है। अपने पिछले अंगों से, ब्रह्मा ने उन दैत्यों को विकसित किया जो स्त्रियों के अत्यन्त प्रिय हैं, तथा अत्यन्त कामासक्त होने के कारण वे उनके साथ मैथुन हेतु उनके पास आए (श्लोक 23)। ब्रह्मा ने पहले तो उनकी मूर्खता पर केवल हँसी उड़ाई — किन्तु जब निर्लज्ज असुर उनके निकट आ गए, तो उनकी हँसी क्षोभ में बदल गई, और फिर भय में, तथा वे उनसे भागकर अत्यन्त शीघ्रता से दूर चले गए (श्लोक 24)।

भगवान् के प्रति ब्रह्मा की पलायन, तथा अशुद्ध शरीर का परित्याग

अपनी ही सृष्टि से पलायन करते हुए, ब्रह्मा श्रीहरि के पास पहुँचे — वरदान देने वाले, जो अपनी शरण में दौड़कर आने वालों की व्यथा को दूर करते हैं, तथा जो अपने भक्तों को कृपा दर्शाने हेतु उनकी अपेक्षा के अनुरूप रूप में स्वयं को प्रकट करते हैं (श्लोक 25)।

“मेरी रक्षा कीजिए, हे परमात्मन्!” ब्रह्मा ने पुकारा। “मैंने आपकी आज्ञा से इन जीवों की रचना की, किन्तु ये पापी प्राणी मेरे साथ मैथुन करने पर उतारू हैं, मेरे प्रभो। आप ही एकमात्र ऐसे हैं जो व्यथित लोगों की पीड़ा को समाप्त करने में समर्थ हैं, तथा जो उन लोगों को पीड़ा देते हैं जो कभी आपके चरणों की शरण नहीं लेते।” (श्लोक 26-27)

पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणेनासृजं प्रजाः ।

ता इमा यभितुं पापा उपाक्रामन्ति मां प्रभो ॥ २६ ॥

pāhi mām paramātmaṁs te preṣaṇenāśṛjaṁ prajāḥ tā imā yabhituṁ pāpā upākṛāṁanti mām prabho

अर्थ: “मेरी रक्षा कीजिए, हे परमात्मन्! मैंने आपकी आज्ञा से इन प्रजाओं की रचना की, किन्तु ये पापी प्राणी मेरा उल्लंघन करने आ रहे हैं, मेरे प्रभो।” (स्कन्ध 3, अध्याय 20, श्लोक 26)



अपने ही द्वारा अभी-अभी रचे गए निर्लज्ज दैत्यों से खदेड़े जाते हुए, ब्रह्मा भयभीत होकर श्रीहरि की शरण में भागते हैं, अपनी ही थकान से उत्पन्न इन जीवों से रक्षा की याचना करते हुए (श्लोक 23-27)।

भगवान्, जो अन्य प्राणियों के मन को स्पष्ट रूप से देख सकते हैं, ब्रह्मा की व्यथा को समझ लेते हैं तथा उन्हें सरल परामर्श देते हैं: “अपने इस अशुद्ध शरीर को त्याग दो” — अशुद्ध, ग्रन्थ स्पष्ट करता है, क्योंकि उसने कामी असुरों को उत्पन्न किया था तथा उनकी वासना को उद्दीप्त किया था। ब्रह्मा ठीक वैसा ही करते हैं जैसा कहा गया (श्लोक 28)।

उस त्यक्त शरीर के साथ जो होता है वह अध्याय के सबसे प्रभावशाली अंशों में से एक है। वह सन्ध्या का रूप धारण कर लेता है, दिन तथा रात्रि के मिलन-बिन्दु का, वह समय जो सदैव वासना के उद्दीपन से जुड़ा रहा है — तथा असुर, रजोगुण से अभिभूत होने के कारण, इस सन्ध्या को एक सुन्दर युवती समझ बैठते हैं: अलंकृत, मनोहारी तथा आकर्षक (श्लोक 29-32)। मोहित होकर, असुर उससे मूर्खतापूर्ण, चापलूसीपूर्ण प्रश्न करते हैं — वह कौन है, किसकी पुत्री है, वह यहाँ क्यों आई है, तथा क्या वह उनके लिए अपने बाल गूँथेगी — और अपने भ्रम में, वे उस सन्ध्या को ही पकड़ लेते हैं, यह विश्वास करते हुए कि उन्होंने एक स्त्री को पकड़ा है (श्लोक 33-37)।

इस प्रसंग को सर्वोत्तम रूप में, तथा जैसा कि परम्परा स्वयं इसे प्रस्तुत करती है, वासना की पूर्ति की किसी शाब्दिक कथा के रूप में नहीं, अपितु एक सजीव मानवीकरण के रूप में समझा जाना चाहिए: प्राकृतिक जगत् — सन्ध्या, दिन, रात्रि, निद्रा, स्वप्न — यहाँ ब्रह्मा के अपने ही क्षणिक भावों से उत्पन्न होते हुए दिखाया गया है, प्रत्येक को उसी प्रकार के जीव द्वारा अपनाया जाता है जो उसके अनुकूल है। यह अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में यह दर्शाता है कि सृष्टि जगत् किस सीमा तक सृष्टिकर्ता की अपनी प्रकृति का विस्तार माना जाता है, उसके सबसे रहस्यमय क्षण भी उतने ही जितने उसके सबसे तेजस्वी क्षण।



भगवान् के परामर्श से, ब्रह्मा उस अशुद्ध देह को त्याग देते हैं जिसने दैत्यों की काम-वासना को आकर्षित किया था; वह सन्ध्या-काल का रूप धारण करती है, और मोहित असुर, उसे एक सुन्दरी स्त्री समझकर, आश्चर्यचकित होकर उसके चारों ओर एकत्र हो जाते हैं (श्लोक 28-32)।

गन्धर्व, अप्सराएँ, भूत, पिशाच तथा पितर

अन्धकारमय सृष्टियों को पीछे छोड़कर, ब्रह्मा अधिक तेजस्वी सृष्टियों की ओर मुड़ते हैं। गहरे अर्थ वाली एक हँसी के साथ, उन्होंने अपनी ही सुन्दरता से गन्धर्वों — स्वर्गीय गायकों — तथा अप्सराओं, स्वर्ग की नर्तकियों, के समूहों को विकसित किया; तथा जब उन्होंने उस तेजस्वी, चन्द्रमा के प्रकाश से बने रूप को त्याग दिया, विश्वावसु तथा अन्य गन्धर्वों ने आनन्दपूर्वक उस पर अधिकार कर लिया (श्लोक 38-39)।

इसके पश्चात्, अपनी ही आलस्य से, ब्रह्मा ने भूतों तथा पिशाचों को विकसित किया — उन्हें नग्न तथा बिखरे बालों वाला देखकर, ग्रन्थ के अनुसार, अपनी आँखें बन्द कर लीं। वह त्यक्त शरीर, जम्हाई के रूप में, स्वयं निद्रा बन गया, वही अवस्था जो जीवों के मुख से लार टपकने का कारण बनती है; तथा यही भूत तथा पिशाच, अध्याय स्पष्ट करता है, उन लोगों पर आक्रमण करते हैं जो इस प्रकार अशुद्ध हो जाते हैं — ऐसा आक्रमण जिसे इस वर्णन में उन्माद कहा गया है (श्लोक 40-41)।

तत्पश्चात्, स्वयं को शक्ति तथा ऊर्जा से परिपूर्ण जानकर, ब्रह्मा ने अपने अदृश्य रूप से साध्यों तथा पितरों — पूर्वजों — को विकसित किया; तथा यही उसी अदृश्य शरीर के माध्यम से है कि कर्मकाण्ड में निपुण लोग श्राद्ध आदि अवसरों पर साध्यों तथा पितरों को आहुतियाँ अर्पित करते रहते हैं (श्लोक 42-43)। अदृश्य रहने की अपनी क्षमता से, उन्होंने सिद्धों तथा विद्याधरों को विकसित किया, उन्हें अन्तर्धान नामक अपना वह

अद्भुत रूप प्रदान किया (श्लोक 44)। तथा एक दिन, जल में अपना प्रतिबिम्ब देखकर तथा उसकी प्रशंसा करते हुए, उन्होंने उसी प्रतिबिम्ब से किम्पुरुषों तथा किन्नरों को विकसित किया — ऐसे प्राणी जो, आज भी, अपनी पत्नियों के साथ प्रत्येक प्रातःकाल ब्रह्मा की स्तुति गाते हैं (श्लोक 45-46)।



अपनी ही मनोहरता से ब्रह्मा गन्धर्व तथा अप्सराओं को विकसित करते हैं; अपनी आलस्य से भूत तथा पिशाचों को; अपने अदृश्य रूप से साध्य तथा पितरों को; तथा जल में अपने ही प्रतिबिम्ब से किम्पुरुष तथा किन्नरों को — प्रत्येक जाति ब्रह्मा के उसी क्षणिक भाव के रूप को अपना लेती है जिससे वह उत्पन्न हुई (श्लोक 38-46)।

अन्ततः, एक दिन, ब्रह्मा अपने सृष्टि-कार्य के अपेक्षित गति से न बढ़ने की चिन्ता से भारी होकर पूरी लम्बाई में लेट गए, तथा उस उदास मनोदशा में उन्होंने एक और शरीर त्याग दिया। उससे झड़े केश सर्प बन गए; तथा जब वह शरीर स्वयं रेंगता चला, हाथ-पैर सिकुड़े हुए, उससे भयंकर सर्प तथा नाग उत्पन्न हुए, उनकी गर्दनें फन के रूप में फैली हुई (श्लोक 47-48)।

मनु तथा ऋषिः सृष्टि अपनी पूर्णता तक पहुँचती है

इस दीर्घ, विचित्र, अत्यन्त व्यक्तिगत सृष्टि-क्रम के पश्चात् ही ब्रह्मा उस बिन्दु तक पहुँचते हैं जिसे अध्याय उनके कार्य की वास्तविक पूर्णता के रूप में प्रस्तुत करता है।

एक दिन, ब्रह्मा को ऐसा प्रतीत हुआ मानो उनके जीवन का उद्देश्य अन्ततः पूर्ण हो गया हो, तथा उस समय — सबसे अन्त में — उन्होंने अपने ही मन से मनुओं को विकसित किया, जो जगत् के कल्याण को आगे बढ़ाते हैं (श्लोक 49)। उन्हें उन्होंने अपना ही मानव-रूप प्रदान किया; तथा पहले से रचे गए जीव — देवगण, गन्धर्व तथा अन्य — मनुओं को देखकर ब्रह्मा की सराहना करते हुए बोले: “हे ब्रह्माण्ड के सृष्टिकर्ता! हमें प्रसन्नता है कि आपने जो उत्पन्न किया है वह भली-भाँति किया गया है। चूँकि इस मानव-रूप में समस्त धार्मिक कृत्यों (जैसे पावन अग्नि में आहुति डालना) की सुदृढ़ स्थापना हो गई है, हम सब इसके साथ यज्ञ-आहुतियों को साझा करेंगे।” (श्लोक 50-51)

इस सराहना के क्षण में कुछ ऐसा है जो सूक्ष्मता से हृदयस्पर्शी है। भय, पलायन, लज्जा तथा उससे पहले हुए अनेक विचित्र जन्मों के पश्चात्, यह मानव-रूप है — ब्रह्मा के अपने ही मन से विकसित, ठीक उसी क्षण जब उन्होंने अपने उद्देश्य को पूर्ण होते हुए अनुभव किया — जो पहले से रचे जा चुके प्राणियों से वास्तविक उल्लास प्राप्त करता है। इसे यहाँ सृष्टि-क्रम में किसी बाद के विचार के रूप में नहीं, अपितु उसकी चरम

परिणति के रूप में प्रस्तुत किया गया है, वह रूप जिसके माध्यम से यज्ञ, कर्मकाण्ड तथा उपासना की सम्पूर्ण व्यवस्था जगत् में सर्वप्रथम भली-भाँति स्थापित होती है।



अपनी सृष्टि का प्रयोजन अन्ततः पूर्ण होते अनुभव कर, ब्रह्मा अपने ही मन से मनुओं को विकसित करते हैं, उन्हें अपना ही मानव-रूप प्रदान करते हुए — और उनसे पूर्व रचे गए जीव, देवता तथा गन्धर्व सहित, देखकर सराहना करते हैं (श्लोक 49-51)।

अध्याय का अन्तिम कार्य ऋषियों का है। कठोर तप, उपासना, योग तथा गहन ध्यान से युक्त होकर, तथा अपनी इन्द्रियों को वश में करके, ब्रह्मा — प्रथम ऋषि — ने अपने प्रिय पुत्रों, ऋषियों को विकसित किया (श्लोक 52)। तथा उनमें से प्रत्येक को, अजन्मा सृष्टिकर्ता ने अपने ही शरीर का एक अंश प्रदान किया, वह अंश जो गहन ध्यान, मन की एकाग्रता, अलौकिक शक्ति, तपस्या, उपासना तथा वैराग्य से चिह्नित था (श्लोक 53)।

तेभ्यश्चैकैकशः स्वस्य देहस्यांशमदादजः ।

यत्तत्समाधियोगर्द्धितपोविद्याविरक्तिमत् ॥ ५३ ॥

tebhyaś caikaikaśaḥ svasya dehasyāṁśam adād ajaḥ yat tat samādhi-yogarddhi- tapo-vidyā-viraktimat

अर्थ: प्रत्येक ऋषि को स्वयं सृष्टिकर्ता के शरीर का एक अंश प्राप्त हुआ — समाधि, योग-सिद्धि, तप, विद्या तथा वैराग्य से युक्त वह अंश, मानो ब्रह्मा का ही एक जीवन्त भाग उनमें उतर आया हो। (स्कन्ध 3, अध्याय 20, श्लोक 53)



तपस्या, ध्यान तथा वैराग्य द्वारा स्वयं को अनुशासित करने के पश्चात्, प्रथम द्रष्टा ब्रह्मा ऋषियों को — अपने ही प्रिय पुत्रों को — विकसित करते हैं, प्रत्येक को अपने ही शरीर का एक जीवन्त अंश प्रदान करते हुए (श्लोक 52-53)।

इस कार्य के साथ अध्याय समाप्त होता है। यहाँ कोई भव्य नाट्यपूर्ण उपसंहार नहीं है, पूर्ववर्ती दोनों अध्यायों को समाप्त करने वाले कौतूहल जैसा कोई अन्त नहीं है — केवल एक विशाल परियोजना की शान्त, सुविचारित पूर्णता, श्लोक-दर-श्लोक, जीव-दर-जीव, जब तक कि सृष्टि का सम्पूर्ण पदानुक्रम, सबसे अन्धकारमय दैत्य से लेकर सबसे बुद्धिमान ऋषि तक, जगत् में अपना स्थान नहीं पा लेता।

इस अध्याय की मुख्य शिक्षाएँ

1. इस वृत्तान्त में सृष्टि यान्त्रिक नहीं, अपितु आत्मीय है। ब्रह्मा किसी विरक्त इच्छा-मात्र से प्रत्येक जाति को शून्य से नहीं बुलाते; प्रत्येक जीव-वर्ग वस्तुतः उनके अपने किसी अंश से उत्पन्न होता है — उनकी छाया, उनकी क्षुधा, उनकी लज्जा, उनकी सुन्दरता, उनकी आलस्य, उनका प्रतिबिम्ब, उनका मन — यह सुझाते हुए कि सृष्टि जगत् वस्तुतः अपने सृष्टिकर्ता की अपनी प्रकृति की छाप धारण करता है (श्लोक 17-53)।
2. सृष्टिकर्ता स्वयं भी भय तथा असुरक्षा से मुक्त नहीं है। इस अध्याय में ब्रह्मा को अपनी ही सन्तानों से दो बार भागते हुए दिखाया गया है — एक बार उन यक्षों तथा राक्षसों से जो उन्हें निगल जाना चाहते हैं, तथा एक बार कामी दैत्यों से — यह स्मरण कराते हुए कि सृष्टि पर सत्ता होना किसी को उसके परिणामों की पहुँच से परे नहीं रखता (श्लोक 20-21, 23-24)।
3. सच्ची शरण केवल भगवान् के प्रति समर्पण में ही मिलती है। जब ब्रह्मा अपनी ही विकट स्थिति को हल नहीं कर पाते, उनका उत्तर लड़ना या तर्क से बच निकलना नहीं है अपितु सीधे श्रीहरि के पास दौड़कर रक्षा की याचना करना है — तथा यह भगवान् का सरल परामर्श है, ब्रह्मा की अपनी कोई शक्ति नहीं, जो संकट का समाधान करता है (श्लोक 25-28)।
4. जो त्याग दिया जाता है वह लुप्त नहीं होता — वह कुछ और बन जाता है, तथा किसी का बन जाता है। इस अध्याय में प्रत्येक त्यक्त शरीर उससे उत्पन्न जीवों द्वारा अपनाया जाता है: रात्रि यक्षों तथा राक्षसों द्वारा, दिन देवताओं द्वारा, सन्ध्या भ्रमित असुरों द्वारा, निद्रा भूतों तथा पिशाचों द्वारा। सृष्टि के इस वृत्तान्त में कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता; सब कुछ किसी अन्य रूप में निरन्तर रहता है।

5. मानव-रूप को सृष्टि की केवल एक जाति नहीं, अपितु उसकी पूर्णता के रूप में प्रस्तुत किया गया है। केवल मनुओं के जन्म के साथ, जो ब्रह्मा के अपने ही मन से उनके उद्देश्य के पूर्ण होने के क्षण विकसित होते हैं, पहले से रचे जा चुके प्राणियों का व्यापक समुदाय अपनी सराहना अर्पित करता है — यह मानव-रूप को यज्ञ तथा उपासना की सम्यक् स्थापना के वाहन के रूप में विशेष स्थान देते हुए (श्लोक 49-51)।

6. ज्ञान तथा वैराग्य को एक शाब्दिक विरासत के रूप में वर्णित किया गया है, न कि केवल एक शिक्षा के रूप में। ऋषि केवल ब्रह्मा से ध्यान, तपस्या तथा वैराग्य नहीं सीखते — उन्हें, ग्रन्थ के अनुसार, उनके अपने शरीर का एक वास्तविक अंश प्रदान किया जाता है जो ठीक इन्हीं गुणों से चिह्नित है, यह सुझाते हुए कि ऐसी अनुभूति की क्षमता, एक सच्चे अर्थ में, कुछ ऐसा है जो हम पहले से ही अपने भीतर धारण करते हैं (श्लोक 53)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय की शुद्ध ईमानदारी में एक विशेष प्रकार की सान्त्वना है जिसे पहचानना सरल नहीं है। ब्रह्मा, स्वयं ब्रह्माण्ड के वास्तुकार, यहाँ किसी अस्पृश्य, सर्वनियन्त्रक व्यक्तित्व के रूप में नहीं दिखाए गए हैं अपितु ऐसे किसी के रूप में जो लड़खड़ाता है, जो अपनी ही रचना से भयभीत होता है, जो भागता है, जो सहायता की याचना करता है, तथा जो केवल भगवान् की ओर, बिना किसी संकोच के, मुड़ने से ही अपना पैर पुनः जमा पाता है। यदि समस्त वस्तुओं के सृष्टिकर्ता को स्वयं ब्रह्माण्ड के आदिकाल में ही ऐसी शरण की आवश्यकता पड़ी, तो यह पहचानने में एक निश्चित स्वतन्त्रता है कि हमारे अपने भय अथवा भ्रम के क्षण हमें ऐसी ही किसी शरण-याचना से वंचित नहीं करते। तथा अध्याय के समापन-चित्र में एक और गहरी सान्त्वना है: कि ऋषियों में समाहित ध्यान, तपस्या तथा वैराग्य के वे गुण उनकी शून्य से बनाई गई कोई उपलब्धि नहीं थे, अपितु सृष्टिकर्ता के अपने ही अस्तित्व का एक अंश, जो उन्हें सर्वथा प्रदान किया गया। हम स्वयं जो भी स्थिरता अथवा ज्ञान विकसित कर पाते हैं, उसे उसी भावना में, आविष्कार के रूप में कम, तथा स्मरण के रूप में अधिक — एक विशाल विरासत का एक अंश, जीने हेतु प्रतीक्षारत — समझा जा सकता है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, अपने भीतर के उस एक अंश पर कुछ शान्त क्षण बिताइए जिसे आप अब तक केवल एक दोष के रूप में देखने के लिए प्रलोभित हुए हैं — एक भय, एक थकान, एक पुरानी लज्जा — तथा कोमलतापूर्वक पूछिए कि क्या वह भी उस वस्तु का कच्चा माल हो सकता है जिसे आपने अभी तक बनने नहीं दिया है। ब्रह्मा की अपनी छाया ने रात्रि को जन्म दिया; उनकी अपनी आलस्य ने निद्रा को जन्म दिया; उनके भीतर कुछ भी बिना प्रयोजन के त्याग नहीं दिया गया। कुछ क्षणों के लिए शान्त बैठिए, धीरे-धीरे श्वास लीजिए, तथा धीमे स्वर में दोहराइए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” अपने भीतर के जिस अंश को सर्वाधिक परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत होती है, उसे भगवान् को अर्पित कीजिए, तथा विश्वास कीजिए, जैसा कि ब्रह्मा को स्वयं इसी अध्याय में सीखना पड़ा, कि सच्ची शरण तथा सच्चा नवीनीकरण केवल उन्हीं की ओर मुड़ने से मिलते हैं।

निष्कर्ष

तृतीय स्कन्ध का विंश अध्याय जीव-जातियों की उत्पत्ति के बारे में विदुर के प्रश्न का उत्तर किसी परम्परागत सृष्टि-कथा से सर्वथा भिन्न वृत्तान्त द्वारा देता है — किसी दिव्य योजना से सहजता से प्रकट होने वाली एकल विशाल रचना नहीं, अपितु ब्रह्मा के अपने ही शरीरों तथा मानसिक अवस्थाओं का एक दीर्घ, प्रायः चौंकाने वाला क्रम, प्रत्येक त्यक्त तथा प्रत्येक बारी में उसी वर्ग के जीव द्वारा अपनाया गया जो उसके अनुकूल है। उनकी छाया से उत्पन्न भयावह यक्षों तथा राक्षसों से लेकर, उनके तेज से उत्पन्न देवताओं तक, उनकी थकान से उत्पन्न दैत्यों तक, तथा गन्धर्वों,

अप्सराओं, भूतों, पिशाचों, पितरों, सिद्धों, विद्याधरों, किम्पुरुषों, किन्नरों, सर्पों तथा नागों तक जो आगे आते हैं, अध्याय स्थिर रूप से अपनी वास्तविक परिणति की ओर बढ़ता है: सबसे अन्त में जन्मे मनु, ठीक उस घड़ी जब ब्रह्मा का दीर्घ परिश्रम पूर्ण-सा प्रतीत हुआ, तथा ऋषि, जिन्हें ब्रह्मा वस्तुतः अपना ही एक सजीव अंश प्रदान करते हैं। विदुर केवल यह समझना चाहते थे कि सृष्टि किस प्रकार प्रकट हुई; मैत्रेय के स्थान पर वे उन्हें एक ऐसे सृष्टिकर्ता का चित्र देते हैं जो स्वयं गहराई से तथा व्यक्तिगत रूप से उस प्रत्येक वस्तु में सम्मिलित है जिसे वह अस्तित्व में लाता है — तथा जो, अपनी ही सृष्टि से अभिभूत होकर, अपनी शरण ठीक वहीं पाता है जहाँ इस अध्याय का प्रत्येक जीव अन्ततः पाया जाता है: भगवान् के चरणों में।

श्रीमद्भागवतम् का दिव्य ज्ञान हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जाग्रत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), तृतीय स्कन्ध, विंश अध्याय, पृष्ठ 222–227।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम् · विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र की आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा सिफ़ारिश के अनुसरण में प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, निष्ठापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिखाए गए हैं तथा उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी भी प्रकाशक के साथ कोई सम्बद्धता अथवा समर्थन निहित नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-3-chapter-20-brahma-dwara-rachit-vibhinn-prakar-ke-jeev.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम् · कल्कि अवतार इंटरनेशनल · बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट